वर्तमान में शिक्षण के बदलते आयाम चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

अरुण कुमार वर्मा*

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। शिक्षा जगत भी इससे अछूता नहीं है। शिक्षा प्रणाली में भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। पूर्व में जहाँ अधिगम प्रक्रिया विषय केंद्रित थी वहीं आज बाल केंद्रित हो गई है। शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षण के मानक भी बदले हैं। शिक्षण का सीधा संबंध शिक्षक से है इसलिए नई शिक्षा प्रणाली शिक्षक में भी परिवर्तन की अपेक्षा रखती है। भारत में कुछ शिक्षण संस्थाओं को छोड़ दिया जाए तो ज़्यादातर शिक्षक पारंपरिक शिक्षण पद्धति पर शिक्षण कार्य कर रहे हैं। ऐसे में वर्तमान शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम, शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य समन्वय का अभाव होना स्वाभाविक है। वर्तमान तकनीकी युग में पाठ्यक्रम और विद्यार्थी शिक्षक से जैसी अपेक्षा रखते हैं शिक्षक उसकी पूर्ति नहीं कर पाता है जिसके कारण शिक्षार्थी पर शिक्षा का एकांगी प्रभाव ही पड़ता है। वह विषय की जानकारी तो अर्जित कर लेता है लेकिन जीवन मूल्य अर्जित नहीं कर पाता है। इसका प्रभाव वर्तमान में देखने को मिल रहा है। शिक्षा जगत की नीति नियामक संस्थाओं की नीतियों का अनुसरण करते हुए वर्तमान परिवेश के साथ 'अप टू डेट' रहकर ही शिक्षक की वास्तविक परिकल्पना को प्राप्त किया जा सकता है। इस शोध के माध्यम से वर्तमान शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच समन्वय के अभाव को तलाशने का सहज प्रयास है जिससे शिक्षण के वर्तमान मानक को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जीवन और जगत के हर क्षेत्र में परिवर्तन हो रहा है। शिक्षा का क्षेत्र भी इस परिवर्तन से अछूता कैसे रह सकता है? इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप पुरानी मान्यताएं एवं रूढियाँ टूट रही हैं और नये-नये प्रयोग से नई मान्यताएँ निर्मित हो रही

* *पी.जी.टी.* हिंदी, जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, रीवा (मध्य प्रदेश)

हैं। प्राचीन काल में जहाँ शिक्षा का स्वरूप अध्यापक केंद्रित था वहीं आज बाल केंद्रित हो गया है। शिक्षा का यह आधारभूत परिवर्तन बालकों के सर्वांगीण विकास को लेकर गतिशील है। इस बदलते परिवेश में शिक्षा नीतियाँ, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण के मानक भी बदले हैं। वर्तमान के साथ सामंजस्य के लिए शिक्षक में भी परिवर्तन अपेक्षित है।

शिक्षा में आए बदलाव का यदि विश्लेषण करें तो एक समय था जब शिक्षा में समाज की आवश्यकताओं पर ज़ोर दिया जाता था और उसी के अनुसार बालकों को शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा में पाठ्यपुस्तक, बेंत और शिक्षक का आधिपत्य था। बालक को दुष्प्रवृत्तियों का भंडार माना जाता था और दुष्प्रवृत्तियों को दूर करना ही शिक्षा का उद्देश्य माना जाता था। तभी तो यह कहावत प्रचलित थी कि *'बेंत को काम में न लाना बालक को बरबाद करना है।'* शिक्षा में बालक को स्थान मिलने में बहुत लंबा सफर तय करना पड़ा है। बाल शिक्षा के आदर्श को पहली बार रूसो ने अपनी पुस्तक 'इमील' में स्थापित किया है। इस क्रम में पेस्टालाजी, फ्रोबेल, जॉन डीवी तथा मैडम मॉन्टेसरी ने बालक की स्वतंत्रता पर बल दिया। भारतीय शिक्षा जगत में बाल केंद्रित शिक्षा के उन्नायकों में गिजूभाई बधेका अग्रणी थे। इन्होंने 'बाल देवो भव' का नारा देकर बालकों के गाँधी के रूप में प्रसिद्धि पाई। समय-समय पर शिक्षा में बदलाव होते रहे। वर्ष 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को संसद द्वारा स्वीकृति मिली। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सिफ़ारिश की गई कि पूरे देश की स्कूली पाठ्यचर्या में एक सर्वमान्य तत्व हो। इस नीति ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करने व समीक्षा करने का उत्तरदायित्व सौंपा। बदलाव के इस क्रम में प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में गठित समिति की रिपार्ट जिसका शीर्षक था 'शिक्षा बिना बोझ के'[1] (लर्निंग विदाउट बर्डन) को 2005 की पाठ्यचर्या में प्रमुखता से लिया गया।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली से पूर्व सूचना को ही ज्ञान समझा गया, जिसके कारण बच्चों में रटने की प्रवृत्ति का विकास होने लगा। परीक्षा के दबाव से शिक्षार्थी और अभिभावक तनावग्रस्त रहने लगे। इस समस्या से निजात को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में पाँच निर्देशक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा गया–(1) ज्ञान को स्कूल के बाहर के ज्ञान से जोड़ना, (2) पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना, (3) पाठ्यचर्या का इस तरह से संवर्धन कि वह बच्चों के चहुँमुखी विकास के अवसर उपलब्ध करवाए बजाय इसके कि वह पाठ्यपुस्तक केंद्रित बनकर रह जाए, (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना और (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।[2] इन सिद्धांतों को व्यवहार

रूप देने के उद्देश्य से एनसीईआरटी एवं एससीईआरटी द्वारा पाठ्यक्रम का समय-समय पर निर्माण हो रहा है और परीक्षा के तनाव से बचने के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा सतत एवं समग्र मूल्यांकन और ग्रेडिंग प्रणाली को लागू किया गया है।

वर्तमान स्कूली पाठ्यचर्या प्रत्येक बालक की निजी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षक से यह अपेक्षा करती है कि वह उनकी सामर्थ्य और योग्यता के अनुकूल सीखने के लिए प्रोत्साहित करे। शिक्षा की वर्तमान प्रणाली जहाँ बालक को अधिगम की स्वतंत्रता प्रदान करती है वहीं शिक्षण के क्षेत्र में शिक्षक के लिए एक चुनौती भी है। पूर्व में शिक्षक विषय-वस्तु की सूचना देता था और शिक्षार्थी उसे रट लेता था परंतु आज उसे बच्चों की सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए तरह-तरह के अवसर उपलब्ध कराने हैं। वर्तमान तकनीकी युग में शिक्षा नीति, पाठ्यक्रम और शिक्षार्थी, शिक्षक से जैसी अपेक्षा रखते हैं शिक्षक उसकी पूर्ति नहीं कर पा रहा है। कुछ शिक्षण संस्थानों को छोड़ दिया जाये तो ज़्यादातर शिक्षक पारंपरिक शिक्षण पद्धति पर शिक्षण कार्य कर रहे हैं जिसके कारण पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं शिक्षार्थी के मध्य समन्वय का अभाव होना स्वाभाविक है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षार्थी पर शिक्षा का एकांगी प्रभाव ही पड़ता है। वह विषय की जानकारी तो अर्जित कर लेता है परंतु उसके व्यावहारिक पक्ष से अनभिज्ञ रहता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम, शिक्षार्थी एवं शिक्षक के बीच समन्वय के अभाव का पता लगाने के उद्देश्य से ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में कार्यरत शिक्षक की व्यावसायिक अभिरुचि का मापन करने के लिए 200 शिक्षकों पर किए गए मेरे व्यक्तिगत सर्वे के दौरान आए परिणामों से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत सिर्फ़ 25 प्रतिशत शिक्षक व्यावसायिक कुशलता के प्रति जागरूक हैं और शिक्षण में नवाचार करना चाहते हैं। शहरी शिक्षक में यह स्थिति 50 प्रतिशत है। सच्चाई यह है कि हममें से अधिकतर शिक्षक व्यावसायिक कुशलता के प्रति जागरूक न रहकर पारंपरिक रूप से शिक्षण कार्य कर रहे हैं। इसके लिए व्यक्तिगत कारणों के साथ-साथ और कई कारण हो सकते हैं परंतु व्यवसाय के प्रति उदासीनता के कारण शिक्षार्थी की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती।

अनुसंधान बताते हैं कि बच्चा जन्म से ही बहुत जिज्ञासु होता है। बड़ों से पूछकर, बाहरी परिवेश से देखकर, छूकर और बोध के द्वारा बहुत सारी चीजों को जान लेता है। उदाहरणस्वरूप घर की छोटी-से-छोटी चीजों के प्रति वह जिज्ञासु होता है। जैसे ही हम कुछ नई चीज उसकी अनुपस्थिति में घर में लाते हैं या किसी चीज को हटा देते हैं तो आते ही उसके विषय में प्रश्न करता है। बच्चा आस-पास की अपनी दुनिया से सक्रिय रूप से जुड़ा होता है। वह खोजबीन

करता है, प्रतिक्रिया करता है, चीजों के साथ कार्य करना, चीजें बनाना और अर्थ गढ़ने का कार्य करता है। बच्चे के इस बाहरी ज्ञान को स्कूली ज्ञान से जोड़कर शिक्षक जब शिक्षण कार्य करता है तब शिक्षा जीवन से जुड़कर सरस और उपयोगी बन पाती है और बच्चे की जिज्ञासा का पोषण हो पाता है। बालक जब स्कूल आता है तब नये पाठ्यक्रम के प्रति उसके मन में जिज्ञासा और उत्साह होता है। यदि शिक्षक पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों से ग्रस्त है तब बालक विद्यालयी शिक्षा से विमुख होकर कुंठा का शिकार हो जाता है और अनुशासनहीनता की ओर अग्रसर होता है। वर्तमान में यह स्थिति स्कूलों में देखने को मिल रही है। इस संदर्भ में गिजू भाई बधेका लिखते हैं *''जिसे हम बालकों का उधम मचाना कहते हैं वह अधिकतर हमारी शिक्षा पद्धति पर बालक का व्यक्तिगत विद्रोह होता है।''*[3]

नई शिक्षा प्रणाली शिक्षण के क्षेत्र में जहाँ शिक्षक के सामने कई चुनौतियाँ उत्पन्न करती है वहीं बच्चों को बेहतर अधिगम की संभावनाएं प्रदान करती है। नई शिक्षा प्रणाली में हर बच्चा महत्वपूर्ण है। शिक्षक जब प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करता है तब शिक्षण हर बच्चे के लिए उपयोगी बन पड़ता है। इससे बच्चे की सक्रियता को प्राथमिकता मिलती है जिससे उसकी जन्मजात बुद्धि और कल्पना को सम्मान मिलने से अधिगम का स्तर बढ़ जाता है। इसके विपरीत आज अधिकतर स्कूल सिर्फ़ प्रतिभावान बच्चों तक केंद्रित हैं। कक्षा में शिक्षक का ध्यान अच्छे बच्चे या औसत बच्चों तक सीमित रह जाता है। कमजोर छात्र कक्षा में उपेक्षित रह जाता है जबकि 'बाल केंद्रित शिक्षा' यह स्वीकार करती है कि हर बच्चा किसी क्षेत्र में विशेष होता है भले ही उसकी परिवेशगत परिस्थितयाँ अलग हों। जब शिक्षक परिवेशगत परिस्थितियों को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करता है तो सीखने की प्रक्रिया में वृद्धि होती है। बच्चे की इसी विशेषता को लक्ष्य करते हुए 'दिवास्वप्न' में गिजूभाई बधेका लिखते हैं

> *''ये पाठशाला के लिए अयोग्य नहीं हैं बल्कि पाठशाला उनके लिए अयोग्य है। वे जिस काम के लायक हैं पाठशाला उनको वह काम सिखाती नहीं है।''*[4]

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में स्कूल या कालेजों में ज़्यादा विषय समावेशित करने का संकेत दिया गया है जिससे हर बच्चे की विशेष प्रतिभा को निखारा जा सके।

आज सामाजिक संरचना में कर्मशीलता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता जा रहा है। व्यवसाय में दक्षता के लिए कर्मशील होना ज़रूरी है। जिस प्रकार वकील, डॉक्टर या कारीगर अपने व्यवसाय का ज्ञान अर्जित किए बिना अपने कार्य क्षेत्र में दक्षता हासिल नहीं कर सकता उसी प्रकार शिक्षक से भी अपेक्षा की जाती है कि वह व्यावसायिक कुशलता के प्रति प्रगतिशील हो। इसके लिए ज़रूरी है कि

वह अध्ययनशील हो एवं बाल मनोविज्ञान की जानकारी रखता हो। बाल मन की जानकारी के लिए शिक्षक को अपने बचपन की यादों से जुड़े रहना चाहिए। टॉलस्टाय महान कथाकार के साथ महान शिक्षक भी थे, जब वे बच्चों के प्रति व्यवहार करने बैठते थे तब उनको अपनी बाल्यावस्था की बातें याद होने लगती थीं। तब वे दूसरों की बाल्यावस्था के प्रति उदार माने जाते थे। डॉ. बालसौर रेड्डी का कथन भी इस तथ्य को मजबूती प्रदान करता है–"*बच्चे की मानसिकता को समझे बिना अगर हम उसे कुछ देते हैं तो वह उसे हजम नहीं कर पाता।*"[5] सिर्फ़ विषय ज्ञान ही शिक्षण के लिए पर्याप्त नहीं है। प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षण कौशल विकसित करना ज़रूरी है जिसके अन्तर्गत ज्ञान का नवीनीकरण करते हुए शिक्षा में नवाचार, प्रभावी सम्प्रेषण, शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों का अध्ययन, शिक्षण उपकरणों का समुचित प्रयोग करते हुए शिक्षक आत्मिक विकास के साथ-साथ शिक्षार्थियों को अधिगम में सहायता प्रदान करते हुए एक कर्मशील और उद्यमी नागरिक का योग कर सकेगा।

वर्तमान शिक्षा में पाठ्यक्रम नई शिक्षा नीति को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में बालक का परिवेश भी नई तकनीकी से परिचित होता है। पाठ्यक्रम और बच्चों के परिवेशगत ज्ञान के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए शिक्षक से अपेक्षित है कि वह नई शिक्षा नीति को ध्यान में रखते हुए नई शिक्षण तकनीकी से जुड़कर शिक्षार्थी को सीखने के लिए प्रोत्साहित करें। आज स्कूल सिर्फ़ विषय-वस्तु पर केंद्रित हैं, बच्चों की अन्य दक्षताओं को नजरअंदाज किया जाता है। दक्षता के लिए स्वतंत्रता की ज़रूरत है, उसी को केंद्र में रखकर उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण के भय से मुक्त ग्रेडिंग प्रणाली और सतत एवं समग्र मूल्यांकन का प्रावधान किया गया है। शिक्षक अगर इस प्रणाली को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करता है तभी वह मूल्यांकन की इस प्रणाली और बालक के साथ न्याय कर पायेगा।

वर्तमान समाज में प्रजातांत्रिक मूल्यों का तेजी से विकास हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक उपकारणों की क्रांति बालक मानस से गहरे रूप में जुड़ी है। ऐसे में शिक्षक के सामने एक चुनौती है कि वह किस तरह से ऐसे छात्रों का बौद्धिक पोषण करे। शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि शिक्षण में नवाचार करते हुए बहुविधा, सतत एवं समावेशी शिक्षण पर बल दे। इसके लिए उसे आई.सी.टी. एवं आ.ई.टी. मिश्रित शिक्षण की ओर ध्यान देना आवश्यक है। ग्रामीणांचल स्कूलों में इस तरह की सुविधा का अभाव है। शिक्षकों को इस तरह के प्रशिक्षण की आवश्यकता है, फिर भी यथा संभव बहुविधा शिक्षण का प्रयास करना चाहिए। कई राज्य सरकारों ने शिक्षण की इस व्यवस्था पर ध्यान देते हुए बच्चों के लिए

कार्यक्रम तैयार कराए हैं और स्कूल समय के दौरान इसका प्रसारण होता है जिसका लाभ बच्चों को मिल रहा है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षण, शिक्षक के लिए जहाँ एक चुनौती है वहीं बच्चों के लिए ढेरों संभावनाएं समाहित किए हुए है। शिक्षक के मन-मस्तिष्क में निर्मित तानाशाही परिकल्पना को खंडित कर बाल मन से जुड़कर उनके साथ आनंदित होने के लिए आमंत्रित करती है। कवीन्द्र रवीन्द्र की बाल अवधारणा को मानें तो-

''सृजनात्मक और उदार आनंद बचपन की कुंजी है। नासमझ वयस्क संसार द्वारा उसकी विकृति का खतरा है। इसी सृजनात्मकता एवं उदार आनंद की रक्षा और उनमें सीखने की सहज इच्छा और युक्तियों को समृद्ध करना शिक्षण की कसौटी है।''[6]

संदर्भ

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005*, नयी दिल्ली, पृष्ठ-7
2. _____ 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005*, नयी दिल्ली, पृष्ठ-8
3. बधेका, गिजुभाई. 2001. *ऐसे हों शिक्षक*, संस्कृति साहित्य प्रकाशन, शाहदरा, पृष्ठ-21
4. _____ 1999. दिवास्वप्न, *नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया*-सत्रहवां संस्करण, पृष्ठ-83
5. _____ 2001. *ऐसे हों शिक्षक*, संस्कृति साहित्य प्रकाशन, शाहदरा, पृष्ठ-120
6. पाण्डेय, रामशकल. 2010-11. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ-155